ज्ञान लोचन एवं बाहुबली स्त्रोतम्

श्री वादिराज कवि एवं
अज्ञातकर्त्तृक

अनुवादक - ब्र. राजेन्द्र जैन
संपादक - ब्र. विनोद जैन
ब्र. अनिल जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानलोचन स्तोत्रम्
एवं
बाहुबलि स्तोत्रम्

श्री वादिराज कवि एवं अज्ञातकर्त्तृक

मूल सम्पादक

पं. पन्नालाल सोनी

अनुवादक

ब्र. राजेन्द्र जैन

श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल, पिसनहारी, जबलपुर

अनुवाद सम्पादक

ब्र. विनोद जैन

श्री दिग. जैन अतिशय क्षेत्र

पपौराजी, जिला- टीकमगढ़ (म.प्र.)

ब्र. अनिल जैन

श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल

पिसनहारी, जबलपुर

प्रकाशक

गंगवाल धार्मिक ट्रस्ट

नयापारा, रायपुर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृति - ज्ञानलोचनस्तोत्रम् एवं बाहुबलि स्तोत्रम्
प्रणेता - श्री वादिराज कवि एवं अज्ञातकर्तृक
संपादन - पं. पन्नालाल सोनी
अनुवादक - ब्र. राजेन्द्र जैन
अनुवाद संपादक - ब्र. विनोद जैन ब्र. अनिल जैन
प्रतियाँ - 1000

सहयोग राशि - 5/-

कम्पोजिंग - राजेश कोष्टा 47, गढ़ा बाजार, जबलपुर

प्राप्ति स्थल -

- श्री सनत जैन, गंगवाल धार्मिक ट्रस्ट, नयापारा, रायपुर
- श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन साहित्य प्रकाशन समिति
- श्री १००८ पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन चौबीसी मंदिर, पंचशील नगर भोपाल फोन नं. ०७५५ - ७६४९६७, ५७९००९, ५२७७८२
- ब्र. जिनेश जैन, संचालक श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल, पिसनहारी मढ़िया, जबलपुर (म.प्र.)
- ब्र. विनोद कुमार जैन श्री ऋषभ व्रती आश्रम पपौरा जी, जिला - टीकमगढ़ फोन नं. ०७६८३ ४४३७८
- अहिंसा वाचनालय सदर बाजार, टीकमगढ़
- वीरेन्द्र जैन बरगदवाला शाप बुढ़ार, जिला शहडोल
- ब्र. अनिल जैन उदासीन आश्रम, छप्पन दुकान के पीछे पलासिया तुकोगंज, इंदौर
- पंचबालयति आश्रम ए.बी. रोड इंदौर
- श्री डालचंद कमलेश कुमार जैन महावीर होटल के सामने बंडा जिला सागर
- श्री बाबूलाल सुमत कुमार जैन मेन बाजार अशोक नगर जिला गुना
- ज्ञानामृत साहित्य केन्द, सागर
- महावीर प्रसाद नरेन्द्र कुमार रारा, गुवाहाटी आसाम
- पद्मचंद पाटनी, तिनसुकिया, आसाम
- मुकेश जैन बाबा एजेन्सी टीटी नगर भोपाल
- प्रीति कैसेट राजकुमार जैन सागर
- श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र आदीश्वर गिरि नोहटा, दमोह (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

ब्र. विनोद जी, का रायपुर आना पर्व में हुआ था। आपकी सारगर्भित वाणी से मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ। मैं प्रतिवर्ष धार्मिक कार्यों में वार्षिक व्यय करता रहता हूँ। ब्रह्मचारी जी की प्रेरणा से भाव त्रिभङ्गी, श्रुतस्कंध, आस्रव त्रिभङ्गी, ध्यानोपदेश कोष ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित किये गये है। उसी श्रृखंला में ज्ञानलोचन एवं बाहुवलि स्तोत्रम् प्रथम बार अनुवाद सहित प्रकाशित किया जा रहा है।

इस ग्रन्थ का प्रकाशन पूज्य पिता श्री कस्तूरचंद जी गंगवाल एवं माता श्री गुलाब बाई गंगवाल की स्मृति में उनकी पुत्रवधु श्रीमती उर्मिता गंगवाल कर रही हैं। श्रीमती उर्मिला जी पिता श्री कस्तूरचंद एवं माताश्री गुलाब बाई के प्रति पूर्ण समर्पित है। श्री कस्तूरचंद एवं गुलाब बाई जी के बारे में क्या कहा जाये ? आप दोनों ही सरल एवं उदार हृदय व्यक्ति थे। आप दोनों की धर्म में अगाढ़ श्रद्धा थी। निरन्तर जीवन में कर्त्तव्यपथ के साथ-साथ जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की तरफ आपका सदैव ध्यान बना रहता था। श्रावक के षट् - आवश्यक कर्त्तव्यों का निर्दोष और समीचीन रीति से पालन करते थे। तीर्थ वंदना में आपकी अत्यधिक रूचि थी। यही कारण था कि आप दोनों ने समस्त तीर्थों की श्रद्धा से पूर्ण वन्दना की थी। निरन्तर धर्म में समय व्यतीत हो ऐसी भावना के कारण आप लघु शान्ति विधान से लेकर सिद्धचक्र विधान यथा काल सम्पन्न करवाते रहते थे। आपकी दृष्टि गुणग्राही थी। सज्जनों का सम्मान तथा दुर्जनों के प्रति मध्यस्थ भाव ये दोनों भाव आप दोनों के व्यक्तित्व में पूर्णतः समाये हुये थे। साधु-सन्तों के प्रति पूर्ण समर्पण था। इन सभी गुणों के कारण आज हम लोग भी धर्म में पूर्ण आस्थावान् हैं।

इस कृति का साधु-समाज में पूर्णरूपेण उपयोग हो ऐसी मनोभावना है।

प्रकाशक
गंगवाल धार्मिक ट्रस्ट
नयापारा, रायपुर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

माणिकचंद दिगम्बर जैन ग्रंथमाला बम्बई से प्रकाशित 'सिद्धान्तसारादि संग्रह' सम्पादन पं. पन्नालाल सोनी का प्रकाशित हुआ था। ब्र. राजेन्द्र जी ने पूज्य पं. पन्नालाल साहित्याचार्य से उसी में प्रकाशित 'ज्ञानलोचनस्तोत्रम्' का स्वाध्याय किया था। पश्चात् स्मृति रखने के लिए अर्थ रूप में लिख भी लिया था। मुझे उन्होंने दिखाया, मैंने देखा तो अर्थ जन्य और शब्द जन्य कुछ त्रुटियाँ दिखाई दीं। मैंने उन्हें दूर कर तथा भाषा व्यवस्थित कर इसे प्रकाशन में लाने का प्रयास किया है। यह रचना अनुपम है।

मुख्यत: से इस कृति में भगवान पार्श्वनाथ के गुणों का स्तवन किया गया है। साथ ही कृतिकार ने अपनी निन्दा की है। जिससे वह अपने जीवन को पवित्र करना चाहते हैं। कृतिकार में साधक जीवन के लक्षण प्रतिभासित होते है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :-

दाता न पाता न च धामधाता
कर्त्ता न हर्त्ता जगतो न भर्त्ता।
दृश्यो न वश्यो न गुणागुणज्ञो
ध्येय: कथं केन स लक्ष्मणा त्वम्॥ 6॥

अर्थ :- हे भगवन्! न आप जगत् के दाता हो, न रक्षा करने वाले हो, न तेज को धारण करने वाले हो, न हरण करने वाले हो, न भरण-पोषण करने वाले हो, न दृष्टिगोचर हो, न किसी के वशवर्ती हो, न गुणज्ञ हो, न अगुणज्ञ हो, हे भगवन्! मैं कैसे तुम्हें ध्याऊ अर्थात् आपका ध्यान कैसे करूँ ? वह कौन सा लक्षण है जिसके द्वारा आपको ध्याया जाये अर्थात् आपका ध्यान किया जाये।

छन्नोऽजिनेनाप्रसवोऽस्थिभूजो
मेघैर्गतो वृद्धिमिहाज्ञतादै:।
आत्मा द्विजश्चेच्छिरवरेऽस्य जल्पे-
त्त्वद्नोत्रमंत्रं न तदाऽस्य भद्रम्।। 14।।

अर्थ :- इस जगत में फूल पत्तों से रहित यह अस्थि रूप वृक्ष चमड़े (त्वचा) से आच्छादित है और अज्ञानता आदि मेघो के द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुआ है और आत्मा रूपी पक्षी इस अस्थि रूपी वृक्ष के अग्रभाग पर यदि हे भगवन्! आपके नाम मंत्र बोले तो इसका भला नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - हे भगवन् ! जब यह जीव मनुष्य शरीर को प्राप्त करके यदि आपके नाम मंत्र का स्मरण करता उस समय उस जीव के अस्थि रूपी वृक्ष शरीर का भला नहीं होता है। आपकी भक्ति करने वाला जीव इस शरीर को त्याग तपस्या के द्वारा सूखा देता है। जिससे अन्य नये शरीरों की परंपरा समाप्त हो जाती है।

पुरांचितं नो तव पादयुग्मं
मया त्रिशुद्धयाऽखिलसौख्यदायि।
परालयातिथ्यपरैधितत्व-
पात्रं हि गात्रं वरिवर्तिमेऽद्य।।33।।

अर्थ :- हे भगवन् ! मेरे द्वारा मन, वचन एवं काय की शुद्धि पूर्वक सम्पूर्ण सुखों को देने वाले आपके चरण युगल पहले कभी नहीं पूजे गये, इसलिए ही आज मेरा शरीर दूसरों के घर का अतिथि दूसरों के अन्न को खाकर वृद्धि को प्राप्त करने का पात्र हुआ है अर्थात् मैं दरिद्र कुल में उत्पन्न हुआ हूँ।

नाट्यं कृतं भूरिभवैरनंतं
कालं मया नाथ ! विचित्रवेषैः।
हृष्टोऽसि दृष्ट्वा यदि देहि देयं
तदन्यथा चेदिह तद्धि वार्यम्।।40।।

अर्थ :- हे नाथ ! नाना भेषों को धारण करके अनंत भवों के द्वारा अनंतकाल में मेरे द्वारा नाटक किया गया। उस नाटक को देखकर हे स्वामिन् ! यदि आप प्रसन्न हुए हों तो देने योग्य पुरुस्कार प्रदान कीजिए। इसके विपरीत मेरा यह भ्रमण यदि आपको अच्छा नहीं लगा हो तो निश्चित रूप से समाप्त कर दीजिये।

साथ ही बाहुबलिस्तोत्र का भी प्रकाशन किया जा रहा है वह भी अपने अनुपम रचना है तथा इसका भी प्रथम बार अनुवाद सहित प्रकाशन कर रहे।

कृति के संयोजन में ब्र. अनिल जी का भी सहयोग प्राप्त हुआ है। अतः मैं उनका आभारी हूँ। ब्र. सुरेन्द्र जी, सरस जी ने प्रकाशन में विशेष सहयोग देकर श्रुत देवता की महती सेवा की। प्रूफ और अज्ञानवश त्रुटियाँ होना संभव है। कृपया उन्हें संशोधित कर पढ़े एवं हो सके तो सूचित करें।

ब्र. विनोद जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुवादक की ओर से ...

मेरे लिए यह एक बड़े सौभाग्य की बात है, कि जैन जगत् के ख्याति प्राप्त राष्ट्रपति पुरुस्कार से पुरस्कृत स्व. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य जी से लगभग १४ वर्ष तक लगातार अध्ययन करने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ और उन्हीं के सानिध्य में रहकर एम.ए. दर्शनाचार्य आदि की परीक्षाएं उत्तीर्ण की। मेरी जिज्ञासा कोर्स के अतिरिक्त अन्य नवीन रचनाओं को पढ़ने की रहती है। कहीं भी प्रवचन आदि करने जाता हूँ तो वहां के शास्त्र भण्डार का अवश्य ही अवलोकन करता हूँ। यदि कोई अपठित रचना प्राप्त होती है तो उसको अवश्य पढ़ता हूँ। इसी जिज्ञासा प्रकृति के कारण में पं. जी से अन्य खाली समय में ऐसी ही अपठित रचनाओं का अध्ययन करता था। इसी के अन्तर्गत ज्ञानलोचन स्तोत्र एवं बाहुबलि स्तोत्र का भी अध्ययन किया था। उसी दौरान अर्थ का स्मरण रखने के लिये अनुवाद भी करते गये यह कार्य हमारे पास बहुत लम्बे समय से अव्यवस्थित रूप से रखा हुआ था। ब्र. भाई विनोद जी एवं अनिल जी जो कि निरन्तर अप्रकाशित प्राचीन पाण्डुलिपियों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न करते रहते हैं। ब्र. विनोद जी ने मेरी उस अव्यवस्थित रफ कार्य को लेकर स्वयं संशोधित कर तथा कम्प्यूटर संबंधित समस्त कार्यों को कर इसको प्रकाश में लाने का प्रयास किया है। हम उन्हें किन शब्दों द्वारा आभार व्यक्त करें। अनुवाद में मूल श्लोकों के भाव को स्पष्ट करने का पूर्ण प्रयास किया है फिर भी गलतियां रहना संभव है। भूल के लिए विद्वत्जन हमें क्षमा करेंगे और रचना को पढ़कर पुण्यार्जन करेंगे। ब्र. सुरेन्द्र जी दर्शनाचार्य के सहयोग से इस ग्रंथ का प्रकाशन किया जा रहा है - आप धन्यवादार्ह हैं।

ब्र. राजेन्द्र जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री वादिराज कवि

'ज्ञानलोचनस्तोत्र' के कर्त्ता श्री वादिराज हैं। इन्होंने वाग्भटालंकार पर 'कविचन्द्रिका ' नाम की एक सुन्दर संस्कृत टीका लिखी है। उसी की प्रशस्ति से मालूम होता है, कि ये खण्डेलवाल वंश में उत्पन्न हुए थे और इनके पिता का नाम पोमराज था। तक्षक नगरी के राजा राजसिंह के संभवत: ये मंत्री थे और राजसेवा करते हुए ही इन्होंने इस टीका की रचना की थी। राजा राजसिंह भीमदेव के पुत्र थे। कविचन्द्रिका की समाप्ति इन्होंने विक्रम संवत् १७२९ की दीपमालिका को की थी। ये बहुत बड़े विद्वान् थे। इन्होंने स्वयं ही कहा है, कि इस समय मैं धनंजय, आशाधर और वाग्भट का पद धारण करता हूँ। अर्थात् मैं उनकी जोड़ का विद्वान् हूँ और जिस तरह उक्त तीनों विद्वान् गृहस्थ थे मैं भी गृहस्थ हूँ :-

धनंजयाशाधरवाग्भटानां
धत्ते पदं सम्प्रति वादिराज:।
खाण्डिल्यवंशोद्भवपोमसून:
जिनोक्तिपीयूषसुतृप्तगात्र:॥

प्रशस्ति के एक और श्लोक में उन्होंने अपनी और वाग्भट की समानता बड़ी खूबसूरती से दिखलाई है :-

श्रीराजसिंहनृपतिर्जयसिंह एव
श्रीतक्षकाख्यनगरी अणहिल्लतुल्या।
श्रीवादिराजविबुधोऽपरवाग्भटोऽयं
श्रीसूत्रवृत्तिरिह नन्दतु चार्कचन्द्रम्॥

अर्थात् हमारे राजा राजसिंह जयसिंह (वाग्भट कवि जिस राजा के मंत्री थे) ही हैं और यह तक्षक नगरी अणहिल्लबाड़े (जयसिंह की राजधानी) के तुल्य है और वादिराज दूसरा वाग्भट है। इनके बनाये हुए और किसी ग्रंथ का हमें पता नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानलोचनस्तोत्रम्

ज्ञानस्य विश्राम्यति तारतम्यं
परप्रकर्षादतिशायनाद्य ।
यस्मिन्न दोषावरणे तुलावद्–
दृष्टेष्टशिष्टोक्तनयप्रकाशे ॥ 1 ॥
ध्यात्वा च यं ध्यायति नौति नुत्त्वा
नत्त्वा नमत्यत्र परं न लोकः ।
श्रुत्वाऽऽगमान् यस्य श्रृणोति नान्याञ्
श्री पार्श्वनाथं तमहं स्तवीमि ॥ 2 ॥ युग्मम् ॥

तृणाय मत्वाखिललोकराज्यं
निर्वेदमाप्तोऽसि विशुद्धभावैः ।
ध्यानैकतानेन च चेतसाभूः
कैवल्यमासाद्य जिनेश ! मुक्तः ॥ 3 ॥

वरं यथेष्टं वृणुतेऽत्र वर्याऽ
भिभूय राजन्यकमाशु विश्वम् ।
गुरुं च बुद्धं कपिलं हरादीँ–
स्तथा शिवश्रीः सततं भवंतम् ॥ 4 ॥

परैः प्रणीतानि कुशासनानि
दुरंतसंसारनिबंधनानि ।
त्वया तु तान्येव कृतानि संति
तीक्ष्णानि भर्माणि यथा प्रयोगात् ॥ 5 ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

1-2. तुला के समान प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम रूप प्रमाण और नय के प्रकाश में जिनमें दोष और आवरण नहीं है और जिनके ज्ञान की प्रकर्षता और अतिशय से ज्ञान का तारतम्य हीनाधिकपना विश्रान्त हो जाता है और इस जगत में जिनका ध्यान करके लोग दूसरों का ध्यान नहीं करते, जिनकी स्तुति करके दूसरों की स्तुति नहीं करते, जिनको नमस्कार करके दूसरों को नमस्कार नहीं करते, जिनके आगम को सुनकर लोग अन्य आगमाभासों को नहीं सुनते ऐसे उन पार्श्वनाथ स्वामी की मैं स्तुति करता हूँ अर्थात् स्तवन करता हूँ।

3- हे जिनेश ! आपने सम्पूर्ण राज्य को तृण के समान तुच्छ मानकर विशुद्ध भावों के द्वारा निर्वेद भाव को प्राप्त होकर और उपयोग से ध्यान की एकाग्रता के द्वारा केवलज्ञान को प्राप्त कर मुक्ति को प्राप्त किया।

4- जैसे इस संसार में स्वंयबर में वर को वरण करने वाली कन्या के द्वारा सम्पूर्ण राजाओं के समुह को छोड़कर (तिरस्कृत कर) इच्छित वर को वरा जाता है। अर्थात् कन्या अपने इच्छित वर को वरण करती है। वैसे ही मोक्षरूपी लक्ष्मी वृहस्पति, बुद्ध, कपिल और रुद्रादि को छोड़कर निरन्तर आपका ही वरण करती है।

5- दूसरे आप्ताभासों के द्वारा प्रतिपादित किये गये खोटे शासन अर्थात् खोटा है अन्त जिनका ऐसे (कुशासन) संसार के कारण है किन्तु आपके द्वारा वे ही कुशासन-सुशासन किये जाते हैं। जैसे तीक्ष्ण रस प्रयोग से लोहे को सोना बनाया जाता है उसी प्रकार हे भगवन् ! कुवादियों के एकान्तवादी कथन को आप स्याद्वाद नय से संस्कृत करके, सम्यग् अनेकान्त बना देते हो। यह आपके शासन का अद्भुत अपूर्व अतिशय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दाता न पाता न च धामधाता
कर्त्ता न हर्त्ता जगतो न भर्त्ता।
दृश्यो न वश्यो न गुणागुणज्ञो
ध्येय: कथं केन स लक्ष्मणा त्वम् ॥ 6 ॥

दत्से कथं चेद्दृगिनस्त्वमिष्टं
चिंतामणिर्वा भविनां सुभावात्।
मतं यदीत्थं तव सेवया किं
स्वभाववादो ह्यवितर्क्य एव ॥ 7 ॥

संसारकूपं पतितान् सुजंतून्
यो धर्मरज्जूद्धरणेन मुक्तिम्।
नयत्यनंतावगमादिरूप-
स्तस्मै स्वभावाय नमो नमस्तात् ॥ 8 ॥

रणत्यमोघं सकलो जनस्त्वां
विव्वोकवृंदैरजितं सदा हि।
पद्मालयापूजितपादयुग्मं
चित्तानवस्थाहरणं पराघ्र्यम् ॥ 9 ॥

णमो सव्वोसहिपत्ताणं।

भणत्यमोघं सकलक्रियौघ-
मबोधतो देहिगणो न सिद्धयै।
तथा जिनोक्तेरमला गुणास्ते
प्रीणंति भव्यानिह पंचभाद्रै: ।। 10 ।।

णमो सव्वोसहिजिणाणं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

6- हे भगवन् ! न आप जगत् के दाता हो, न रक्षा करने वाले हो, न तेज को धारण करने वाले हो, न हरण करने वाले हो, न भरण-पोषण करने वाले हो, न दृष्टिगोचर हो, न किसी के वशवर्ती हो, न गुणज्ञ हो, न अगुणज्ञ हो, हे भगवन् ! मैं कैसे तुम्हें ध्याऊ अर्थात् आपका ध्यान कैसे करुँ ? वह कौन सा लक्ष्ण है जिसके द्वारा आपको ध्याया जाये अर्थात् आपका ध्यान किया जाये।

7- हे भगवन् ! आप भव्य जीवों को चिन्तामणि के समान स्वभाव से सम्यग्दर्शन को कैसे देते हो ? यदि आपका मत इसी प्रकार है कि आप भव्य जीवों को स्वभाव से ही देते हैं तो फिर आपकी सेवा का क्या फल है ? और यदि स्वभाव से ही देते हैं तो स्वभाव निश्चित रूप से तर्क का विषय नहीं बनता।

8- जो संसार रूप कूप में गिरते हुए भव्य जीवों को धर्म रूपी रस्सी के द्वारा उठाकर मुक्ति की ओर ले जाते हैं। तथा जो अनन्त ज्ञानादि स्वभाव रूप से ही परोपकारी हैं उन पार्श्व प्रभु के लिये बारम्बार नमस्कार नमस्कार हो।

9- हे पार्श्वनाथ भगवन् ! सभी लोग आपको अमोघ कहते हैं क्योंकि आप हाव-भाव कटाक्षों से युक्त स्त्रीयों से नहीं जीते गये। अतः सदा अजित रहे हैं। आपके चरण युगल लक्ष्मी के द्वारा पूजे गये चित्त की चंचलता को हरण करने वाले हैं तथा श्रेष्ठ हैं।

10- प्राणीगण सम्पूर्ण क्रियाओं के समूह को अज्ञान से अमोघ (कार्यकारी) कहते हैं। किन्तु वे सभी क्रियायें मुक्ति के लिये नहीं है इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान आपका उपदेश है । आपके निर्मल गुण इस संसार में पंचकल्याणकों के द्वारा अथवा पंचाचारों के उपदेश के द्वारा भव्य जीवों को प्रसन्न करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थितोऽयमात्मा वपुषि स्थितोऽच्छः
स्यात्कश्चरः कर्मकलंकपंकैः।
हेमाश्मवत्त्वद्गदितस्तपोग्नि-
र्निर्णीक्त तं त्वं जिन ! मुक्तिदोऽतः।। 11।।

अमित्रमित्रास्त्रविवर्द्धमान-
द्वेषानुरागाः परमात्ममूढाः।
हिंसापकारान्यकलत्रसक्ता
व्यामोहभावं न कथं लभंते।। 12।।

तव स्तुतेरीश ! रसं रसज्ञा
जानाति या तच्छवणाछ्रुतिः सा।
तदुत्तमांगं पदयोर्न तं यद्
ध्यायेच्च धीस्त्वां मनुते मनस्तत्।। 13।।

छन्नोऽजिनेनाप्रसवोऽस्थिभूजो
मेघैर्गतो वृद्धिमिहाज्ञताद्यैः।
आत्मा द्विजश्चेच्छिरवरेऽस्य जल्पे-
त्त्वद्गोत्रमंत्रं न तदाऽस्य भद्रम्।। 14।।

प्राणी विवर्त्तातुरतः सुखीह
किमन्यचिंताभिरितीव दृष्ट्वा।
इभ्यं च निःस्वं सरुजं रुजोनं
मनः समाधेयमतस्त्वदुक्तया।। 15।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

11- स्वर्ण पाषाण के समान स्वभाव से स्वच्छ निर्मल यह आत्मा शरीर में स्थित होता हुआ कर्म कलंक रूपी कीचड़ के द्वारा समल हो रहा है। हे भगवन्! आपके द्वारा कही गयी तप रूपी अग्नि में भव्य जीव उस आत्मा को शुद्ध करते हैं। इसलिये हे जिन ! आप मुक्ति को देने वाले हो।

12- परमात्मा के स्वरूप को नहीं जानने वाले अज्ञानी जन, शत्रु, मित्र, शस्त्र में बढ़ रहा है द्वेष और अनुराग जिनको और जो हिंसा उपकार परस्त्री में आसक्त हैं ऐसे मूर्ख प्राणी व्यामोहभाव - मिथ्यात्य भाव को कैसे प्राप्त नहीं करते हैं ? अर्थात् करते ही हैं।

13- हे ईश ! जो जीभ आपके स्तुति के रस को जानती है वही वास्तव में रसज्ञ- रस के स्वाद को जानने वाली है। जो आपके वचनों का श्रवण करते है वह ही कर्ण हैं। वह ही उत्तमांग है जो आपके चरण युगल में नम्रीभूत होकर नमस्कार करता है और बुद्धि वही हैं, जो आपका ध्यान करती है, मन वही है जो आपको मानता है।

14- इस जगत में फूल पत्तों से रहित यह अस्थि रूप वृक्ष चमड़े (त्वचा) से आच्छादित है और अज्ञानता आदि मेघो के द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुआ है और आत्मा रूपी पक्षी इस अस्थि रूपी वृक्ष के अग्रभाग पर यदि हे भगवन्! आपके नाम मंत्र बोले तो इसका भला नहीं है।

भावार्थ - हे भगवन्! जब यह जीव मनुष्य शरीर को प्राप्त करके यदि आपके नाम मंत्र का स्मरण करता उस समय उस जीव के अस्थि रूपी वृक्ष शरीर का भला नहीं होता है। आपकी भक्ति करने वाला जीव इस शरीर को त्याग तपस्या के द्वारा सूखा देता है। जिससे अन्य नये शरीरों की परंपरा समाप्त हो जाती है।

15- हे भगवन्! आप में अति श्रद्धावान प्राणी इस लोक में शीघ्र ही मानसिक पीड़ा से रहित हो जाता है। अत: अन्य चिंताओं के करने से क्या प्रयोजन है ? वह भले ही धनवान, निर्धन, रोगी अथवा निरोग हो उसे आपकी वाणी से मन का समाधान करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हित्वांगनापद्धतिमेष शाखी
स्फुट: सदेशे भवतोऽस्त्यशोक: ।
निरीक्ष्य निर्विण्णमिनं विरागोऽ-
भवत्स्वयं भृत्यगतिर्हि सैषा ।। 16 ।।

खोदापतंती सुमनस्तति: प्रा-
गस्यै जिनं यष्टुमसूययेव ।
त्वया जितेनावपुषेव हीना
निजेषु पंक्तिर्भवत: सभायाम् ।।17 ।।

ध्वनिर्ध्वनत्यक्रमवर्णरूपो
नानास्वभावो भुवि वृष्टिवत्ते ।
त्वत्तो न देवैरयमक्षरात्मा
जयत्ययं मेचकवज्रगत्याम् ।। 18 ।।

प्रकीर्णकौघा मुनिराजहंसा
जिनं नमंतीव मुहुर्मुहुस्त्वाम् ।
वलक्षलेश्यातनया इवामी
बोधाब्धिफेना: शिवभीरुहासा: ।। 19 ।।

पीठत्रयं ते व्यवहारनाम
छत्रत्रयं निश्चयनामधेयम् ।
रत्नत्रयं दर्शयतीव मार्गं
मुक्तेस्त्वदंघ्रीक्षणत: क्षणेन ।। 20 ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

16- हे भगवन्! स्त्रियों की पद्धति-मार्ग को छोड़कर यह अशोक वृक्ष अपने स्थान में ही स्पष्ट रूप से अशोक अर्थात् शोक रहित हो रहा है। अपने स्वामी को निर्विण्य-वीतराग देखकर यह अशोक वृक्ष विराग-लालिमा से रहित हो गया यह भृत्य गति ऐसी ही है कि सेवक स्वामी का अनुकरण करता ही है।

17- हे जिनेन्द्र भगवान्! सर्वप्रथम जिन भगवान की पूजा करने की ईर्ष्या से ही मानो आकाश से पहले फूलों की पंक्ति गिरती हैं। सो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो आप जिनेन्द्र के द्वारा जीता गया कामदेव अपने वाणों की ही पंक्ति को आपकी समवशरण सभा में छोड़ रहा हो।

18- हे भगवन्! आपकी यह दिव्य ध्वनि आपसे अक्रम अवर्ण तथा एक रूप से ही प्रगट होती है किन्तु वर्षा के समान पृथ्वी पर नाना स्वभाव हो जाती है। यह नाना स्वभाव आपका नहीं है। किन्तु देवों के द्वारा यह ध्वनि अक्षरात्मक होकर पृथ्वी पर जयवन्त वर्तती है।

19- हे भगवन्! आपका ये चामरों का समूह आप जिन को बार बार नमस्कार करते हुए मुनिराज रूपी राजहंसों के समान, शुक्ल लेश्या की पुत्री के सदृश ज्ञान तथा समुद्र के फेन के समान मुक्ति रूपी स्त्री की हँसी के समान सुशोभित होते हैं।

20- आपका पीठत्रय व्यवहार नामक और आपका छत्रत्रय निश्चय नामक रत्नत्रय मार्ग को दर्शाते हुए की तरह प्रतीत होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भामंडले मारकतोपलाभे
निमग्नकायाश्च चतुर्णिकाया: ।
स्नांतीव तीर्थे परमागमाख्ये
देदीप्यमाने स्वदयारसेन ।। 21 ।।

घातीनि कर्माणि जितान्यनेन
काल: समागच्छति नो समीपम् ।
इत्थं मुहुर्ज्ञापयतीव लोकान्
दंध्वन्यते दुंदुभिरंतरिक्षे ।। 22 ।।

क्षुदादयोऽनंतसुखोदयात्तेऽ-
किंचित्करा घातिविघातनाच्च ।
सत्तोदयाभ्यामविघातिनां किं
तोतुद्यतेंऽगं विविषाहिवत्ते ।। 23 ।।

नाश्नासि पश्यन् जिन ! नारकादीन्
हताननंतांश्च हनिष्यमाणान् ।
चारित्रभंगात् खगतप्रसंगात्
कल्पानि चात्रातिशयो हि कश्चित् ।। 24 ।।

लौकांतिकानां त्रिदिवातिगानां
पुंस्त्वोदये सत्यपि नांगनार्त्ति: ।
तथा ह्यसातोदयतो न पीडा
सामग्रयभावान्न फलोदयस्ते ।। 25 ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

21- मरकतमणि के प्रभा के समान प्रभा वाले पार्श्वनाथ प्रभु के प्रभा मण्डल में स्वदया रस से दैदीप्यमान परमागम नामक तीर्थ में चारों निकाय के देवों के शरीर निमग्न श्रान्त हुए की तरह प्रतीत होते हैं।

22- इन पार्श्वनाथ प्रभु के द्वारा घातिया कर्म जीत लिये गये है। काल व्यतीत हो रहा है। वीता हुआ काल समीप नहीं आता है। इस प्रकार लोगों को बार बार बतलाती हुए के समान आकाश में आपकी दुन्दुभि अतिशय रूप से बज रही है।

23- हे भगवन् ! घातिया कर्मों के विनाश से और अनंत सुखादि अनन्त चतुष्टय के प्रकट हो जाने से क्षुधा, तृषा आदि परिसह आपको कोई बाधा नहीं पहुंचा सकते अत: अकिंचित्कर है । अघातिया कर्मों का सत्व और उदय आपके शरीर को पीड़ित कर सकते है क्या ? अर्थात् विष रहित सर्प के समान आपका कुछ नहीं कर सकते।

24- हे जिन ! आप मारे गये और मारे जाने वाले नारकादि प्राणियों को देखते हुए चारित्र के भंग से भोजन नहीं करते किन्तु दीर्घकाल पर्यन्त आकाश में चलने के प्रसंग से इस विषय में निश्चित रूप से कोई अतिशय है कि आप बिना आहार के रहते है।

25- ब्रह्म लोक पंचम स्वर्ग के अन्त में रहने वाले सब देवों में श्रेष्ट लोकान्तिक देवों के पुरुष वेद का उदय रहने पर भी स्त्रियों के निमित्त से काम विकार जनित पीड़ा नहीं होती है। लौकान्तिक देव ब्रह्मचारी होते है। उनकी देविया नहीं होती है। उसी तरह असाता के उदय से हे भगवन् ! आपको पीड़ा नहीं होती है क्योंकि कर्म रूप सामग्री के अभाव में फल का उदय नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योऽत्तीह शेते सतृषः सदोषो
मोमुह्यते द्वेष्टि विषीदतीश !।
इत्येवमष्टादश संति दोषा
यस्मिन्नसौ भूरिभवाब्धिभारः।। 26।।

अद्वैतवादौघनिषेधकारी
एकांतविश्वासविलासहारी।
मीमांसकस्त्वं सुगतो गुरुश्च
हिरण्यगर्भः कपिलो जिनोऽपि।। 27।।

हठेन दुष्टे शठेन वैरा-
दुपद्रुतस्त्वं कमठेन येन।
नीलालचो वा चलितो न योगात्
स एव पद्मापतिनात्तगर्वः।। 28।।

श्रुत्वाऽनुकंपांकनिधिं शरण्यं
विज्ञापयाम्येष भवार्दितस्त्वाम्।
अशक्यतायास्तव सद्गुणानां
स्तुतिं विधातुं गणनातिगानाम्।। 29।।

कुदेववेशंतकदाप्तदास-
कुत्वजाले भ्रमतो निपत्य।
मिथ्यामिषं ग्लस्तमिदं भवाब्धा-
वुरो धृतं कौलिशगोलकं वा।। 30 ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

26- हे स्वामी ! जो इस जगत में खाता है, सोता है, पीता है, सदोष है, अत्यधिक मोह करता है, द्वेष करता है, खेद खिन्न होता है इत्यादि अठारह दोष जिसमें होते हैं वह व्यक्ति विशाल संसार सागर में भार स्वरूप है।

27- अद्वैतवाद के समूह का निषेध करने वाले, एकांत श्रद्धा के विस्तार को हरण करने वाले एवं सत्य तत्त्व की मीमांसा करने वाले मीमांसक, सुगत, गुरु, हिरण्यगर्भ, कपिल और जिन भी आप ही है।

28- हे भगवन् ! जिस हठी दुष्ट शठ कर्मठ के द्वारा आप उपसर्ग को प्राप्त हुए तथा नीलाचल के समान योग से चलित नहीं हुए, किन्तु वह कमठ ही धरणेन्द्र के द्वारा गर्व रहित कर दिया गया। अत: आप धैर्यशाली हैं।

29- हे भगवन् ! संसार के दुखों से सज्जनों को शरणभूत तथा करुणानिधि स्वरूप सुनकर आपसे मैं संसार के दु:खों का निवेदन करता हूँ तथा आपके अगणित सद्गुणों की स्तुति करने को असमर्थता के कारण समर्थ नहीं हूँ अर्थात् आपके गुण अधिक है और मैं उन गुणों का स्तवन करने में समर्थ नहीं हूँ।

30- हे भगवन् ! यह अज्ञानी प्राणी खोटे देव रूप लघु तालाब तथा खोटे आप्त और कुतत्व रूपी जाल में भ्रम से गिरकर संसार रूपी समुद्र में मिथ्यात्व रूपी मांस को निगलकर हृदय में धारण किये हुए कौलिकागोलक के समान होता है अर्थात् कुलीन स्त्री के द्वारा जार पुरुष से गर्भ धारण के समान होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनाद्यविद्यामयमूर्च्छितांगं
कामोदरक्रोधहुताशतप्तम् ।
स्याद्वादपीयूषमहौषधेन त्रायस्व
मां मोहमहाहिदष्टम् ।। 31 ।।

हिंसाऽक्षमादिव्यसनप्रमाद-
कषायमिथ्यात्वकुबुद्धिपात्रम् ।
व्रतच्युतं मां गुणदर्शनोनं
पातुं क्षमः को भुवने विना त्वाम् ।। 32 ।।

पुरांचितं नो तव पादयुग्मं
मया त्रिशुद्ध्याऽखिलसौख्यदायि ।
परालयातिथ्यपरैधितत्व-
पात्रं हि गात्रं वरिवर्तिमेऽद्य ।। 33 ।।

क्रोधाख्यहर्यक्षगृहीतकंठो
हतोस्मि मानाद्रिविचूर्णितांगः ।
मायाकुजायात्तसुकेशपाशो
लोभाह्वपंकौघनिमग्नमूर्त्तिः ।। 34 ।।

तारुण्यबाल्यांत्यदशासु किंचि-
त्कृतं मया नो सुकृतं कदापि ।
जानन्नपीत्थं तु तथैव वर्त्ते
जाग्रच्छ्यालुः करवाणि किं वा ।। 35 ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

31- हे पार्श्वनाथ भगवन् ! अनादि अविद्या अज्ञान रूपी रोग से जिसका अंग यानि आत्मा मूर्च्छित है। काम वासना और तीव्र क्रोध रूपी अग्नि से तपा मोह मिथ्यात्व रूप विशाल जहरीले सर्प से काटे गये मुझको स्याद्वाद रूपी अमृत महौषध के द्वारा अविद्या रूपी रोग से रक्षा करें।

32- हिंसा, अदया, अक्षमा, व्यसन, प्रमाद, कषाय, मिथ्यात्व कुबुद्धि के पात्र, व्रतों से रहित गुणावलोकन से हीन मुझको हे भगवन् ! आपके बिना संसार में कौन रक्षा करने में समर्थ है अर्थात् कोई नहीं है।

33- हे भगवन् ! मेरे द्वारा मन, वचन एवं काय की शुद्धि पूर्वक सम्पूर्ण सुखों को देने वाले आपके चरण युगल पहले कभी नहीं पूजे गये, इसलिए ही आज मेरा शरीर दूसरों के घर का अतिथि दूसरों के अन्न को खाकर वृद्धि को प्राप्त करने का पात्र हुआ है अर्थात् मैं दरिद्र कुल में उत्पन्न हुआ हूँ।

34- क्रोध रूपी सिंह के द्वारा पकडा गया है कण्ठ जिसका, मान के द्वारा पीस दिया गया शरीर जिसका, मायारूपी दुष्ट पत्नी के द्वारा पकडी गई है चोटी जिसकी तथा लोभ रूपी कीचड़ के समूह में डूबी हुई है काय जिसकी ऐसा मैं हूँ। हे भगवन् ! इन कषायों के द्वारा मारा गया हूँ।

35- हे भगवन् ! बालपन जवानी और वृद्धावस्था इन तीनों दशाओं में मेरे द्वारा कभी भी कुछ पुण्य कार्य नहीं किया गया। ऐसा जानता हुआ भी मैं उसी भांति पुण्य कार्य से रहित समय व्यतीत कर रहा हूँ। जाग्रत अथवा सोता हुआ भी मैं क्या करुँ ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दानं न तीर्थं न तपो जपश्च
नाध्यात्मचिंता न च पूज्यपूजा।
श्रुतं श्रुतं न स्वपरोपकारि
हा ! हारितं नाथ ! जनुर्निरर्थम्।। 36।।

भोगाशया भ्रांतमलं श्ववृत्त्या
धराधिपध्यानधरेण धात्र्याम्।
अपास्य रुक्मं मयकारकूटं
गृहीतमज्ञानवशादधीश !।। 37।।

पंचास्यनागीहवसिंधुदावा-
रण्यज्वराध्यादि भवं भयं द्राक्।
त्वद्गोत्रमंत्रस्मरणप्रभावा-
न्मित्रोदयाद्ध्वांतमिव प्रणश्येत्।। 38।।

यतोऽरुचिः संसृतिदेहभोगा-
दनारतं मित्रकलत्रवर्गात्।
आकृष्य चित्तं स्मरणात्त्वदीया-
न्नयंति कर्माणि पदं तदेव।। 39।।

नाट्यं कृतं भूरिभवैरनंतं
कालं मया नाथ ! विचित्रवेषैः।
हृष्टोऽसि दृष्ट्वा यदि देहि देयं
तदन्यथा चेदिह तद्धि वार्यम्।। 40।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

36- हे नाथ ! न मैंने दान दिया, न तीर्थ यात्रा की, न तप तपा, न जप किया, न आत्मा के स्वरूप का विचार किया, न पूज्य पंच परमेष्ठियों की पूजा की तथा निज और पर का उपकार करने वाले शास्त्रों का श्रवण नहीं किया। हा ! कष्ट है दुर्लभ मनुष्य जन्म को व्यर्थ ही खो दिया।

37- हे भगवन् ! भोग भोगने की बुद्धि से श्वान की वृत्ति द्वारा राजाओं की चापलूसी के ध्यान को धारण करने वाले मेरे द्वारा पृथ्वी पर चिरकाल तक भ्रमण किया गया। हे स्वामिन् ! मेरा यह कार्य अज्ञान के वश से सोने के घड़े को छोड़कर पीतल के घड़े को ग्रहण करने के समान है।

38- हे भगवन् ! सिंह, हाथी, युद्ध, समुद्र, जंगल की अग्नि ज्वरादि रोगों से उत्पन्न बडे भय आप के नाम मंत्र के प्रभाव से नष्ट हो जाते है। जिस प्रकार सूर्य के उदय से अंधकार नष्ट हो जाता है।

39- हे भगवन् ! आपके स्मरण से संसार शरीर भोगों से तथा मित्र, स्त्री वर्ग से अरुचि होती है। किन्तु मोहनीय आदि कर्मों का उदय आपके स्मरण से चित्त को आकृष्ट करके उसी ही स्थान को ले जाते हैं अर्थात् संसार शरीर भोगों में फंसा देते हैं।

भावार्थ - आपके स्मरण में लगे चित्त को मोहनीय कर्मोदय पुनः संसार शरीर भोगों में फंसा देता है। यह कैसी विचित्रता है ?

40- हे नाथ ! नाना भेषों को धारण करके अनंत भवों के द्वारा अनंतकाल में मेरे द्वारा नाटक किया गया। उस नाटक को देखकर हे स्वामिन् ! यदि आप प्रसन्न हुए हों तो देने योग्य पुरुस्कार प्रदान कीजिए। इसके विपरीत मेरा यह भ्रमण यदि आपको अच्छा नहीं लगा हो तो निश्चित रूप से समाप्त कर दीजिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रद्धालुता मे यदनंगरंगे
कृपालुताऽभून्मम पापवर्गे।
निद्रालुता शान्तरसप्रसंगे
तंद्रालुताध्यात्मविचारमार्गे।। 41।।

भ्रांत्वा चिरं दैववशेन विन्ना
त्वदुक्तिपूः साधुपदार्थगर्भा।
परैरगम्या नयरत्नशाला
तस्यां कुतो दुःखमहो स्थितानाम्।। 42।।

हिताहितेऽर्थेऽथ हेतिहिता च ?
चिदात्मनो धर्मविचारहीना।
अजात्तपीणीय ? मिवोद्वहंती
मतिर्मदीया जिननाथ ! नष्टा॥ 43॥

यद्यस्त्यनंतं त्वयि दर्शनं मे
तदेव दत्तादणुमात्रमद्यं।
ज्ञानं सुखं वीर्यमतोऽधिकं चे-
द्दद्यात्तदा को जिन ! दूरवर्ती।। 44।।

हिरुक् सुबहिरिंद्रियं न हि भवेन्नमस्यादिकं
पृथक् तदथ नो वृषो न तमृते सदर्थागमः।
इति प्रतिदिनं विभो ! चरणवीक्षणं कामये
ततः कुरु कृपानिधे ! सपदि लोचनानंदनम्।। 45।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

41- हे भगवन् ! मेरी यह काम विलाश में श्रृद्धालुता है। पाप समूह में मेरी कृपालुता है। शान्त रस के प्रसंग में निद्रालुता और आत्म विचार के मार्ग में तंद्रालुता है।

42- चिरकाल तक संसार में परिभ्रमण करके भाग्य के वश से हे भगवन् ! आपके वचन रूपी अच्छे पदार्थ जिसके अन्दर हैं। ऐसी आपकी वचन रूपी पुरी को प्राप्त करके तथा दूसरे मिथ्यादृष्टियों को अगम्य नय रूपी रत्नों की शाल स्वरूप आपकी वचन रूपी पुरी में निवास करने वाले भव्यों को कैसे दुख हो सकता है ?

43- हिताहित रूप पदार्थों के विषय में हित की, चाह चैतन्य स्वरूप आत्मा के धर्म स्वभाव के विचार से रहित अजाकृपाणी न्याय को धारण किये हुये के समान हे जिननाथ ! मेरी बुद्धि मारी गई है।

44- हे भगवन् ! यदि आप में अनन्तदर्शन हैं तो आज मुझे वही अणुमात्र प्रदान कीजिये और ज्ञान सुख वीर्य यदि अधिक है तो इनको भी प्रदान करें क्योंकि हे जिन ! आप से दूरवर्ती कौन है अर्थात् कोई नहीं है।

45- स्वस्थ बाह्य इन्द्रियों के बिना नमस्कारादि नही हो पाते तथा स्वस्थ इन्द्रियों से रहित पुण्य रूप धर्म नहीं होता। धर्म के बिना समीचीन पदार्थों का ज्ञान नहीं होता। हे विभो ! इस प्रकार प्रतिदिन आपके चरण कमलों कर दर्शन अवलोकन करना चाहता हूँ। इसलिये हे करुणानिधि ! शीघ्र मेरी दृष्टि को निर्मल कीजिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तोत्रं कृतं परमदेवगुरुप्रसादा–
च्छीपोमराजतनयेन सुवादिराजा।
सज्ज्ञानलोचनमिदं पठतां मुदे स्तात्
दृग्दोषहारि जगत: परमोपकारि।। 46।।

इति श्रीपोमराजतनयवादिराजविरचितं ज्ञानलोचनस्तोत्रम् समाप्तिगमत्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

46- परम देव और गुरु के प्रसाद से श्री पोमराज के पुत्र श्रेष्ठवादिराज के द्वारा यह स्तोत्र बनाया गया। यह सम्यग्ज्ञानलोचन नामक स्तोत्र पढ़ने वालों को हर्ष करे, जगत के परम उपकार को करने वाला तथा सम्यग्दर्शन के दोषों का नाशक होवे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीबाहुबलिस्तोत्रम्

सकलनृपसमाजे, दृष्टिमल्लाम्बुयुधै-
र्विजितभरतकीर्ति, र्यः प्रवव्राज मुक्त्यै।
तृणमिव विगणय्य, प्राज्यसाम्राज्यभारं,
चरमतनुधराणामग्रणीः सोऽवताद्वः ॥ 1 ॥

भरतविजयलक्ष्मीर्जाज्वलच्चक्रमूर्त्या,
यमिनमभिसरन्ती क्षत्रियाणां समक्षं।
चिरतरमवधूतापत्रापापात्रमासी-
दधिगत गुरुमार्गः सोऽवताद् दोर्बली वः ॥2 ॥

स जयति जयलक्ष्मी, सङ्गमाशामवन्ध्यां,
विदधदधिकधामा सन्निधौ पार्थिवानाम्।
सकलजगदगार व्याप्तकीर्तिस्तपस्या
मभजत यशसे यः सूनुराद्यस्य धातुः ।। 3 ।।

जयति भुजबलीशो बाहुवीर्यं स यस्य,
प्रथितमभवदग्रे क्षत्रियाणां नियुद्धे।
भरतनृपतिनाऽमा यस्य नामाक्षराणि,
स्मृतिपथमुपयान्ति प्राणिवृन्दं पुनन्ति ।। 4 ।।

जयति भुजगवक्त्रोद् वान्तनिर्यद्गराग्निः
प्रशममसकृदापत् प्राप्य पादौ यदीयौ।
सकलभुवनमान्यःखेचरस्त्रीकराग्रोद्
ग्रथितविततवीरुद्वेष्टितो दोर्बलीशः ।।5 ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

1 - सम्पूर्ण नृप समूह के समक्ष दृष्टि युद्ध, जल युद्ध और मल्ल युद्ध के द्वारा भरत चक्रवर्ती की कीर्ति को जीतने वाले, श्रेष्ठ सार्वभौम साम्राज्य भार को तृण के समान नि:सार मानकर जो मुक्ति के लिए दीक्षित हुए थे। वे चरम शरीरियों में अग्रणी बाहूबली स्वामी तुम सब की रक्षा करें।

2 - देदीप्यमान चक्र मूर्ति के द्वारा भरत की विजयलक्ष्मी जिन बाहूबली स्वामी को क्षत्रियों के सामने अभिसरण करती हुई चिरकाल तक लज्जा छोडकर निर्लज्जता का पात्र हुई थी अर्थात् छह खण्ड पृथ्वी के स्वामी भरत चक्रवर्ती को युद्ध में जिन्होंने जीत लिया था। किन्तु जिन्होंने पिता आदिनाथ स्वामी के मार्ग को प्राप्त किया था। वे बाहूबली स्वामी तुम सब की रक्षा करें।

3 - जिन्होंने सब तरफ से अनुसरण करने वाली लक्ष्मी को छोडकर राजाओं की निकटता में और जयलक्ष्मी के संगम की आशा को सफल करते हुए अधिक तेज को धारण किया था। सम्पूर्ण जगत् रूपी घर में व्याप्त है कीर्ति जिनकी ऐसे यशस्वी और जिन्होंने यश के लिए तपस्या को स्वीकार किया था। वे आदि ब्रह्मा के पुत्र बाहुबली स्वामी जयवंत हो।

4 - जिनकी भुजाओं का बल क्षत्रियों के समक्ष मल्ल युद्ध में प्रसिद्ध हुआ था और जिनका नाम सकल चक्रवर्ती भरत के नाम के साथ लोगों के स्मृति पटल पर आ जाता था। तथा जो प्राणी समूह को पवित्र करते है वे बाहुबली स्वामी जयवंत हो।

5 - सर्प के मुख से उगले तथा निकलती हुए विष रूपी अग्नि जिनके चरणों को प्राप्त कर अनेक बार उपशांति को प्राप्त हुई थी और जो सम्पूर्ण जगत में पूज्य है। विधाधरों की स्त्रियों के हाथ से हटाई गई फैली हुई लताओं से जो व्याप्त है। वे बाहुबली जयवंत हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जयति भरतराज प्रांशुमौल्यग्ररत्नो-
पललुलितनखेन्दुः स्रष्टूराद्यस्य सूनुः ।
भुजगकुलकलापैराकुलैर्नाकुलत्वं,
धृतिबलकलितो यो, योगभृन्नैव भेजे ।। 6 ।।

शितिभिरलिकुलाभैराभुजं लम्बमानैः
पिहितभुजविटङ्को मूर्धजैर्वेल्लिताग्रैः ।
जलधरपरिरोध ध्याममूर्द्धेव भूध्रः
श्रियमपुष-दनूनां दोर्बली यः स नोऽव्यात् ।। 7 ।।

स जयति हिमकाले यो हिमानीपरीतं,
वपुरचल इवोच्चैर्विभ्रदाविर्बभूव ।
नवघनसलिलौधैर्यश्च धौतोऽब्दकाले,
खरघृणिकिरणा-नप्युष्णकाले विषेहे ।। 8 ।।

जगति जयिनमेनं योगिनं योगिवर्यै
रधिगतमहिमानं मानितं माननीयैः ।
स्मरति हृदि नितान्तं यः स शान्तान्तरात्मा
भजति विजयलक्ष्मी-माशु जैनीमजय्यां ।। 9 ।।

इति श्रीबाहुबलिस्तोत्रम्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

6 - भरतराज के उच्च मुकुट के अग्रभाग में जडे हुए रत्नों से व्याप्त है नख रूपी चन्द्रमा जिनका ऐसे आदि ब्रह्मा के पुत्र सर्पों के समूह से व्याप्त होने पर भी जो आकुलित नही हुए। जो धैर्य और बल से सहित थे और जो योग धारी होकर शोभित थे वे बाहुबली स्वामी जयवंत हो।

7 - काले भौरों के समूह के समान आभा वाले, भुजाओं तक लम्बे तथा धुंघराले बालों से ढका हुआ है भुजाओं का अग्रभाग जिनका और मेघो से व्याप्त पर्वत के समान जिनका मस्तक अद्‌भुत शोभा धारण करता था। वे बाहुबली स्वामी हम सब की रक्षा करे।

8 - जो शीतकाल में हिम से व्याप्त ऊँचे पर्वत के समान शरीर को धारण करते हुए प्रकट हुए थे और जो वर्षाऋतु में नवीन मेघों के समूह से धूले हुए की तरह जान पडते थे और ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की प्रचण्ड किरणों को सहन करते थे। वे बाहुबली स्वामी जयवंत हो।

9 - इस जगत में जितेन्द्रिय योगियों के स्वामी व श्रेष्ठ योगियों के द्वारा ज्ञात है महिमा जिनकी तथा पूज्यों के द्वारा पूज्यनीय बाहुबली स्वामी को जो शांत अंतरात्मा हृदय में अत्यधिक स्मरण करता है वह जिनेन्द्र सम्बंधी अजेय विजय लक्ष्मी को प्राप्त करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्र. विनोद जैन एवं अनिल जैन द्वारा अनुवादित/सम्पादित कृतियाँ

1.	सिद्धान्त सार	आचार्य जिनचन्द्र	-	प्रकाशित
2.	प्रकृति परिचय	संकलन	-	--"--
3.	ध्यानोपदेश कोष	आचार्य गुरुदास	-	--"--
4.	भाव त्रिभङ्गी	आचार्य श्रुतमुनि	-	--"--
5.	परमागम सार	आचार्य श्रुतमुनि	-	--"--
6.	लघु नयचक्र	आचार्य देवसेन	-	--"--
7.	ध्यान सार	श्री यशःकीर्ति	-	--"--
8.	श्रुत स्कंध	ब्रह्म हेमचन्द्र	-	--"--
9.	आस्रव त्रिभङ्गी	आचार्य श्रुतमुनि	-	--"--
10.	सच्चे सुख का मार्ग	संपादन	-	--"--
11.	धवला परिभाषिक कोश	संकलन	-	अप्रकाशित
12.	जीवकाण्ड (प्रश्नोत्तरी)		-	--"--
13.	चरणानुयोग प्रवेशिका		-	--"--
14.	जैनेन्द्र लघु प्रक्रिया	आचार्य पूज्यपाद	-	प्रेस में
15.	पञ्चसंग्रह	अज्ञात कर्तृक	-	--"--
16.	सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शन....	संकलन	-	--"--
17.	कर्म विपाक	आचार्य सकलकीर्ति	-	प्रेस में
18.	पुरुषार्थ सिद्धुपाय (टीका)	अज्ञात कर्तृक	-	--"--
19.	तत्व विचार	आचार्य बसुनंदी	-	--"--
20.	द्रव्य संग्रह (प्रश्नोत्तरी)		-	अप्रकाशित

डॉ. पं. पन्नालाल साहित्याचार्य ग्रंथमाला, जबलपुर के द्वारा प्रकाशित साहित्य अवश्य पढ़े ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक
गंगवाल धार्मिक ट्रस्ट
नयापारा, रायपुर (छत्तीसगढ़)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org